ISSN: 0973-0583

निर्गुण कवियों का सामाजिक दृष्टिकोण

डॉ० शिव कुमार

मोती चौक, पटना।

सार

भक्तिकालीन समाज अनेक आंतरिक विषमताओं से ग्रस्त अंधकार की कारा से मुक्त होने के लिए व्याकुल था। भारत वर्ष की बहुसंख्यक जनता उन दिनों हिन्दू थी, किन्तु समाज में हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों का समन्वय था। मुसलमानों के आगमन के पहले हिन्दू शासक ही संपूर्ण देश के स्वामी थे। इस कालावधि मे हिन्दुओं की आंतरिक व्यवस्था कुछ चिन्त्य हो गई थी। वर्णाश्रम व्यवस्था का समाज में विकृत रूप दृष्टिगत होने लगा था। ऊँची जाति के लोगों का सम्मान समाज में बढ़ रहा था और निम्न कही जानेवाली जाति के लोगों में हीन भावना का उदय । ऐसी भयावह एवं नाजुक परिस्थिति में निर्गुणमार्गी कवियों ने समाज को नवजीवन प्रदान किया। संत काव्य देश की राजनीतिक धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप विरचित भावनात्मक एवं अनुभूतिप्रवण जन-काव्य है। इसका प्रेरणा स्रोत था-सामान्य मानव का हित-साधन। भारतीय धर्म-साधना के इतिहास में कबीरदास ऐसे महान विचारक एवं प्रतिभाशाली महाकवि हैं, जिन्होंने शताब्दियों की सीमा का उल्लंघन कर दीर्घकाल तक भारतीय जनता का पथ आलोकित किया और सच्चे अर्थो में जन-जीवन का नायकत्व किया।

शब्द कुँजी: भावनात्मक, भेदभाव, धर्म-साधना, जीवन-शक्ति, कल्याणकारी

परिचय:

निर्गुण संत काव्य की रचना का आरम्भ ईसा की 12वीं शताब्दी में ही हो गया था। सन्त परम्परा के सर्वप्रथम पथ प्रदर्शक प्रसिद्ध भक्त कवि जयदेव थे, जिन्होंने 'आदिग्रन्थ' में (बाद में) संगृहीत पदों की भी रचना की थी। उनके समय से लेकर 16वीं शती के पूर्वार्द्ध तक वह युग था जिसमें सन्त सदना, वेणी, नामदेव, रामानन्द, सेना नाई, कबीर, पीपा, रैदास, कमाल एवं धन्ना भगत जैसे अनेक सन्त कवि हुए, जिनमें से सभी की सम्पूर्ण रचनाएँ अभी तक उपलब्ध नहीं हो पाई है। इनमें कम से कम नामदेव, कबीर, रैदास और नानकदेव, ऐसे है जिनकी रचनाएँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। भक्तिकालीन सन्त कवियों ने काव्य और उसके अवयवों को काव्यशास्त्रीय दृष्टि से नहीं देखा और इस सम्बन्ध में उनके यहाँ कुछ विचार-संकेत भी मिलते हैं।'' सन्त काव्य का लक्ष्य था- सामान्य अशिक्षित जनता में सत्य का निरुपण करना, करनी-कथनी में तारतम्य पर बल देना 'नाम' के माधुर्य को जनता तक पहुँचाना।

''उदात्त अनुभूति की सरल एवं हृदयस्पर्शी अभिव्यकित इस काव्य की अनन्य विशेषता है।''[2]

निर्गुणमार्गी कवियों की भक्ति सगुणोपासना से भिन्न एकेश्वरवाद के किसी अनिश्चित रूप पर आधारित रहीं है। वह कभी ब्रह्मवाद की ओर ढलता था तो कभी पैगम्बरी खुदावाद की ओर।' इस कोटि के कवियों में ऊँच-नीच और जाति-पाँति का भेद-भाव नहीं था। वे सबकों समान भाव से देखते थे। उनका कहना था कि ईश्वर का परवाना सबके लिए खुला है। निर्गुण संत कवियों में सेना, कबीर, रैदास, धर्मदास, गुरूनानक, दादू दयाल, सुन्दरदास, मलूकदास, अक्षर अनन्य के नाम उल्लेखनीय है। इस मार्ग के प्रधान प्रवर्त्तक कबीरदास थे। कबीर ने एक ओर तो अद्वैतवाद की कुछ स्थूल बातों को स्वीकारा था, तो दूसरी ओर सूफी फकीरों का प्रभाव भी इन पर कम नहीं था। मुख्य रूप से उन दिनों धर्म में फैले हुए भेदभाव को दूर करना इनका प्रमुख उद्देश्य था। कहा जाता है, स्वामी रामानन्द जी ने इन्हें जुलाहा मानकर अपना शिष्य नहीं बनाया। किन्तु, अपनी आस्था और विश्वास से इन्हें रामानंद जी का शिष्यत्व प्राप्त हो गया था। वास्तव में इनके जीवन में यह एक असाधारण धटना थी और इस घटना के मूल में जाति-पाँति विरोधी भावना काम कर रही थी। इन

दिनों शासक का संबंध जनता से केवल कर वसूल करने तक ही था। मान-मर्यादा का झूठा मोह और आपसी कलह ने केवल हिन्दुओं को ही नहीं, संत समाज को भी प्रभावित किया।

जाति-पाँति पूछे नहीं कोई ।
हरि को भजै सो हरि को होई ॥

इस अर्धाली का संबंध स्वामी रामानन्द के साथ अनायास जुड़ गया था। किन्तु निर्गुणमार्गी संतो ने इस पंक्ति के आशय को मंत्र मानकर अपनाया। इसी प्रकार दादू के शिष्य बखना ने कहा-

हरि को भजै सो हरि को होई ।
नीच ऊँच अन्तर नहीं कोई ॥

वस्तुत: कबीरदास के गुरु स्वामी रामानन्द ने तत्कालीन दबे हुए लोगों को रास्ता दिखाया। जो लोग समाज में सिर उठाकर चल नहीं सकते थे, स्वामी जी उनके लिए भगवान की दया के द्वार खोल दिए। उन्होंने ईश्वर के समक्ष सबको बराबर बताया । कबीरदास जी ने इसी मार्ग का अनुसरण किया। निर्गुण संत काव्य के प्रधान प्रवर्त्तक कबीरदास माने गए । ''भारतीय धर्म-साधना के इतिहास में कबीरदास ऐसे महान विचारक एवं प्रतिभाशाली महाकवि हैं, जिन्होंने शताब्दियों की सीमा का उल्लंघन कर दीर्घकाल तक भारतीय जनता का पथ आलोकित किया और सच्चे अर्थो में जन-जीवन का नायकत्व किया। [4]

कबीर ने निर्गुण निराकार ब्रह्म की आराधना का मार्ग अत्यन्त सरल बना दिया। उन्होने सारे संसार के लोगों से सब जीवों पर दया और प्रेम का आचरण करने की बात कही । उनके लिए सभी जीव बराबर हैं-

बकरी पाती खात है,
ताकी काढ़ी खाल ।
जो नर बकरी खात है,
ताको कवन हवाल ।।

कबीरदास ने समाज में फैले अंधविश्वासों को दूर करने की पूरी चेष्टा की । हिन्दुओं के तीर्थ-व्रत और मुसलमानों के रोजा-नमाज का विरोध उन्होंने जम कर किया। कर्मकाण्ड इत्यादि को तो वे पाखण्ड मानते थे। ध र्म उनके लिए एकमात्र सत्य था, किन्तु हिन्दू-मुसलमान के धर्म में उन्हें कोई अन्तर दृष्टिगत नहीं हुआ। दोनों धर्म एक है, वे मूलत: यही मानते थे। धर्म सुधार से ही समाज का कल्याण हो सकता है, यही उनका लक्ष्य था। इसीलिए उन्होने अपनी वाणी को समाज सुधारक के रूप मे प्रस्तुत किया। कबीरदास जी छुआछूत और जाति-पाति के भेदभाव को अनर्गलि प्रलाप मानते थे। छूआछूत का खण्डन करते हुए उन्होंने कहा -

ज्यों तू वामन वांमनी जाया ।
तौ आन बाट हवै क्यों नहीं आया ।।
जौ तू तुरक तुरकनी जाया ।
तौ भीतर खतना क्यों न कराया ।।

कुल की श्रेष्ठता को लक्ष्य करके भी उन्होंने करारा व्यंग्य किया है-

ऊँचे कुल का क्या जनमियाँ, जै करणीं ऊँच न होई ।
सुबरण कलस सुरै भरया, साधू निंक्षदै सोई ।।

कबीरदास जी ने श्रम को बहुत महत्वपूर्ण बताया है। वे स्वयं भी श्रमजीवी थे, किन्तु धन-सम्पत्ति एकत्र करने की इच्छा के घोर विरोधी थे। इस सन्दर्भ में इन्होंने कहा है -

साईं इतना दीजिए, जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय।।

कबीरदास जी का यह दृढ़ विश्वास था कि मनुष्य एक दूसरे को तभी समान भाव से देख सकता है, जब वह ध र्म, कुल, जाति, शास्त्र और सम्प्रदाय के बन्धन से मुक्त हो। वे कहते थे -

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोई।
एकै आखर पीव का, पढ़े सो पंडित होई।।

कबीरदास ने मनुष्य के जीवन की सूक्ष्म बातों का गहन चिन्तन-मनन किया था। मन की कटुता का परित्याग कर मनुष्य अपना जीवन सफल बना सकता है। अत: उन्होंने एक दूसरे के मन को जीतने की बात कही -

ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करै, आपहुँ शीतल होय।।[5]

सहनशीलता मानव का सहज गुण-धर्म है। इसकी ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा -

खूंदन तौ धरती सहै, बाढ़ सहै बनराइ।।
कुसबद तौ हरिजन सहै, दूजै सहै न जाइ।।[6]

वस्तुत: कवि के रुप में कबीर जीवन के अत्यन्त निकट हैं। उनके काव्य का आधार स्वानुभूति या यथार्थ है। उन्होंने स्पष्ट कहा है- 'मैं कहता हूँ आंखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी।' वे जन्म से विद्रोही, प्रकृति से समाज- सुधारक, कारणों से प्रेरित होकर धर्म-सुधारक, प्रगतिशील दार्शनिक और आवश्यकतानुसारी कवि थे। उनके व्यक्तित्व का पूरा-पूरा प्रतिबिम्ब उनके साहित्य में विद्यमान है।

निर्गुण मार्गी कवियों में रैदास का विशिष्ट स्थान है। निम्न वर्ग में समुत्पन्न होकर भी उत्तम जीवन-शैली, उत्कृष्ट साधना पद्धति तथा अनुकरणीय आचरण के कारण वे आज भी भारतीय धर्म-साधना के इतिहास में सादर स्मरण किये जाते हैं।

रैदास ने सगुण-निर्गुण को एक समान ही माना है। अपनी रचनाओं में इन्होंने दैन्य भाव व्यक्त किया है। भक्ति सम्बन्धी मत को अभिव्यक्त करते हुए उन्होंने कहा है-

सतजुग सति त्रेता जगि, द्वापर पूजा चार।
तीनों जुग तीनों दृढ़े, कलि केवल नाम अधार।।

इनकी रचनाओं में तत्कालीन शासन-व्यवस्था की कठोरता और करों की अधिकता की भी चर्चा है-

करूँ दंडवत् चरन पखारूँ,
तन-मन-धन ऊपरि बारूँ।।

रैदास ने यह बताया है कि धार्मिक अनुभव प्राप्त करने के लिए बुद्धि और हृदय का सहयोग आवश्यक है। उन्होंने ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित करते हुए अपने को पानी और ईश्वर को चन्दन बताया

प्रभू जी तुम चन्दन हम पानी।

वस्तुत: रैदास भी कबीर के मत की पुष्टि करते हुए समाज को सचेत रहने और बाह्याडंबरों से दूर रहने की बात कहते थे। मूर्तिपूजा, तीर्थ-यात्रा आदि ब्राह्य विध ानों का विरोध कर उन्होंने आभ्यन्तरिक साधना पर बल दिया है।

तत्कालीन निर्गुणमार्गी संत कवियों में पीपा का स्थान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। गागरोन गढ़ के राजा होते हुए भी ईश्वर की भक्ति में इनकी अटूट श्रद्धा थी। पीपा ने पश्चिम में भक्ति का प्रचार किया। इन्होंने कबीर की भाँति ही समाज को सतर्क रहने की बात कही। इन्होंने कहा कि यदि कबीर न होते तो कलियुग में भक्ति रसातल को चली गई होती। पीपा की रचनाओं का संग्रह 'श्री पीपा जी की बानी' नाम से हुआ। इस प्रकार के दो संग्रह हस्तलिपि रूप में प्राप्त होते हैं।

कृषक जीवन व्यतीत करते हुए भक्ति एवं समाज-सुधार का कार्य सर्वप्रथम धन्ना भगत ने किया। वे जाति के जाट थे और कृषि का कार्य बहुत ही परिश्रम से करते थे। नामदेव, कबीर, सेन, रैदास आदि से प्रेरणा प्राप्त कर 'धन्ना' भक्त हो गये थे। इन्होंने कहा कि काम, क्रोध , लोभ के कारण मन ईश्वर से विमुख हो जाता है और उसे भूल जाता है। फिर गुरु-कृपा से ही मार्गदर्शन होता है-

'युगति जानि नहिं हृदय निवासी जलत जाल जम फंद परे।
विषु फल रूचि भरे मन ऐसे परम पुरुष प्रभु मन बिसरे ।।
ज्ञान प्रवेश गुरुहि धनदीया ध्यान मान मन एक भए ।
प्रेम भगति मानी सुख जान्या तृप्ति अधाने मुकति भए ।।[7]

धर्मदास भी निर्गुण संत शाखा के एक प्रसिद्ध कवि और कबीरदास के शिष्य थे। किन्तु धर्म दास की रचनाओं में खंडन-मंडन की अपेक्षा प्रेम तत्व एवं समाज सुधार की प्रधानता है। निर्गुण संत कवियों में गुरु नानक देव का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनका जन्म लाहौर के निकट हुआ था। वे अधिक विद्वान और शास्त्र-ज्ञानी नहीं थे। वे बहुश्रुत तथा निजी अनुभव के धनी थे। उन्होंने अवतारवाद, मूर्तिपूजा, ऊँच नीच और वर्णभेद का विरोध किया। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए तथा ब्रह्म (अकाल पुरूष) की प्राप्ति के लिए सीधे-सादे उपदेश दिये। नानकदेव समन्वय शील और उदार प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। गुरू नानक हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण, शुद्र सबकों समान भाव से देखते थे। इनकी गुरु परम्परा 10 गुरूओं तक चली, किन्तु पाचवें गुरू के बाद क्षमाशील संत ही रह गयें, जिन्होंने ध र्म की रक्षा के लिए क्षत्रिय रूप धारण कर लिया था।

नानक के वचनों में रैदास की रस सरलता और पवित्रता के साथ गुरु गंभीर्य है, पर कबीर की प्रखरता नहीं। नानक एक सच्चे भक्त और भक्ति के उपदेशक हैं।

निर्गुण संत कवियों में संत लाल दास, जिन्होंने लाल पंथ चलाया और संत दादू दयाल, जिन्होंने दादू पंथ चलाया, का

नाम उल्लेखनीय है। संत लालदास की कोई रचना अभी तक प्रकाशित नहीं है। संत लालदास का कथन है कि संत को परिश्रम करके जीविका चलानी चाहिए, उसे भिक्षा नहीं माँगनी चाहिए।

लाल जो भगत भीख न मांगिए, माँगत आवे शरम।
घर-घर डारत दु:ख है, क्या बादशाह क्या हरम।।

संत दादू दयाल कबीर, नानक की तरह ही महान संत थे। दादू पंथ के प्रवर्त्तक सन्त दादू दयाल धर्म- सुधारक और रहस्यवादी कवि थे। दादू प्रतिभाशाली कवि थे। वे त्यागी और क्षमाशील थे। प्राय: सन्त मत की समस्त मान्यताएँ इनके काव्य में देखने को मिलती है। उनके शिष्य सन्त दास एवं जगन्नाथ दास ने 'हरडे वाणी' शीर्षक से उनकी रचनाओं का संग्रह प्रस्तुत किया था। 'अंगवधू' भी उनका प्रसिद्ध काव्य संग्रह है।

दादू ने कहा कि गर्व का परित्याग कर ईश्वर की भक्ति करो और किसी को भी अपना शत्रु न समझो -

आपा मेटे हरि भजे, तन-मन तजे विकार।
निरवैरी सब जीव तों, दादू का मत सार।।

'दादू की वाणी'

दादू पंथी संत कवियों में रज्जबदास, सुन्दरदास, गरीबदास, बषना, वाजिद, मोहनदास आदि प्रसिद्ध हैं। इन संत कवियों ने समाज की अनेक बुराइयों की ओर बार-बार संकेत किया है। निर्गुणमार्गी संत कवियों की यह परम्परा बहुत तेजी से विकसित हुई। संत साईदास, संत जसनाथ, संत कमाली, शेख फरीद, संत हरिदास की वाणी ने भी जन-मानस को झंकृत किया।

निर्गुण कवियों की एक परम्परा सूफी संतों के नाम ने प्रसिद्ध हुई। यह परम्परा उत्तरी एवं दक्षिणी भारत से विकसित हुई। सूफी संतों में जायसी, मंझन, कुतवन, उसमान, शेख नवी, आलम, निजामी, मुल्ला वजही, गवासी आदि प्रसिद्ध संत हुए। इनकी प्रेमाख्यानों वाली रचनाएँ बहुत लोकप्रिय हुई। इन सूफी संत कवियों के द्वारा जन- साधारण के ज्ञान-कोष में भी अभिवृद्धि हुई क्योंकि अनेक कवियों ने अपनी रचनाओं में विभिन्न शास्त्रीय तत्वों-दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक, कामशास्त्रीय, ज्योतिष आदि का भी समन्वय किया है।

निष्कर्ष:

निर्गुण सन्तों का व्यक्तित्व सच्चे अर्थों में संवेदनशील था। उनका मानस स्वच्छ और उदार था। उन्होंने तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र अंकित किया है। 'सन्त काव्य आत्मविश्वास, आशावाद और आस्था की भावना संस्थापित करने में सहायक साहित्य है। यह जीवन-शक्ति का अजस्र स्रोत है। इस काव्य का प्रमुख प्रयोजन है- त्रस्त, संतप्त, उपेक्षित, उत्पीड़ित मानव को परिज्ञान प्रदान करना।[8] संक्षेप में, निर्गुण-काव्य आचरण की पवित्रता का संदेश लेकर जनता के समक्ष आया। उसमें युग-बोध एवं युग-चेतन का व्यापक स्वरूप प्रतिफलित है। इसमें संदेह नहीं है कि सन्त कवि अपने समय के समाज के सच्चे प्रहरी थे। नानक की रचनाओं में तो बाबर के आक्रमण-काल में भारत की राजनैतिक अस्थिरता का वर्णन भी मिलता है। इन निर्गुण संत कवियों ने जीवनदायिनी शक्तियों की ओर जन-सामान्य का ध्यान केन्द्रित किया और समाज को सशक्त, निर्दोष एवं कल्याणकारी मार्ग पर अग्रसर करने की पूर्णत: चेष्टा की।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. निर्गुण कवियों के काव्य-सिद्धान्त-डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त, पृष्ठ-32
2. संत कवियों की वाणी - डॉ. कपिलदेव सिंह, पृष्ठ-18
3. वखना की वाणी, पृष्ठ-119
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं0 डॉ0 नगेन्द्र, पृष्ठ-126
5. कबीर ग्रंथावली, उपदेश कौ अंग-9
6. कबीर ग्रंथावली, कुसवद कौ अंग
7. गुरुग्रन्थ साहिब, पृष्ठ-429
8. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं0 डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ-143